बंधन

बंध — बंधक — बन्धनीय — बन्धविधान

प्रकृतिबंध — स्थितिबंध — अनुभागबंध — प्रदेशबंध

मूलप्रकृतिबंध — अन्योगाद — उत्तरप्रकृतिबंध

एक एक मूलप्रकृतिबंध — अन्योगाद मूलप्रकृति बंध — एकैकोत्तरप्रकृति — अन्योगाद उत्तरप्रकृति

24 अनुयोगद्वार

1 समुत्कीर्तना 2 सर्वबंध 3 नोसर्व 4 उत्कृष्ट 5 अनुत्कृष्ट 6 जघन्य 7 अजघन्य 8 सादि 9 अनादि

10 ध्रुव 11 अध्रुव 12 बंधस्वामित्वविचय 13 बंधकाल 14 बंधान्तर 15 बंधसन्निकर्ष 16 भंगविचय

17 भागाभाग 18 परिमाण 19 क्षेत्र 20 स्पर्शन 21 काल 22 अन्तर 23 भाव 24 अल्पबहुत्व

2

गुणस्थान	बंधव्युच्छित्ति	उदयव्युच्छित्ति
1 मिथ्यात्व	१६ मिथ्यात्व, हुंडक संस्थान, नपुंसक वेद, असंप्राप्त सृपाटिका संहनन एकेन्द्रिय, स्थावर, आतप सूक्ष्म, अपर्याप्त, साधारण, द्वी.त्री.चतु, नरकद्विक, नरकायु	१० मिथ्यात्व, आतप, सूक्ष्म, अपर्याप्त साधारण, स्थावर, एकेंद्रियादि ४ जाति
2 सासादन	25 अनन्तानुबन्धि ४, स्त्यानत्रिक, दुर्भग, दुस्वर, अनादेय, बीचके ४ संस्थान, ४ संहनन, अप्रशस्त विहायोगति, स्त्रीवेद, नीचगोत्र तिर्यंचद्विक, तिर्यंचायु, उद्योत	४ अनन्तानुबन्धि कषाय
3 मिश्र	0	1 सम्यग्मिथ्यात्व
४ असंयत	१० अप्रत्याख्यान ४, वज्रर्षभनाराच संहनन, औदारिक द्विक, मनुष्यद्विक, मनुष्यायु	१७ अप्रत्याख्यान ४, वैक्रियिक षट्क नरकायु, देवायु, मनुष्यानुपूर्वी तिर्यंचानुपूर्वी, दुर्भग, अनादेय, अयश
५ देशसंयत	४ प्रत्याख्यानावरण कषाय ४	८ प्रत्याख्यान ४, तिर्यंचगति, तिर्यंचायु, नीचगोत्र, उद्योत
६ प्रमत्तसंयत	६ शोक, अरति, असाता, अस्थिर, अशुभ, अयश	५ आहारकद्विक, स्त्यानगृद्धित्रिक
७ अप्रमत्त	१ देवायु	४ सम्यक्त्व, अंतिम संहनन ३
८ अपूर्वकरण प्रथम	2 निद्रा, प्रचला	0
छठा भाग	३० पंचेन्द्रिय, वैक्रि. द्विक, देवद्विक, आहारकद्विक तैजसद्विक, समचतुरस्त्र, वर्णादि ४, अगुरुलघु चतुष्क, प्रशस्त विहायो, त्रसादि ९, निर्माण, तीर्थंकर	0
सातवा भाग	४ हास्य, रति, भय जुगुप्सा	६ हास्य रति, अरति, शोक, भय जुगुप्सा

३६

गुणस्थान	बंधव्युच्छित्ति	उदयव्युच्छित्ति
९ अनिवृत्तिकरण	५ पुंवेद, संज्वलन क्रोध, मान, माया लोभ	६ नपुंसकवेद, स्त्रीवेद, पुंवेद, संज्वलन क्रोध, मान, माया
१० सूक्ष्मसांपराय	१६ ज्ञाना. ५, दर्शना. ४, अंतराय ५, यश, उच्चगोत्र	१ संज्वलन लोभ
११ उपशांतमोह	०	२ वज्रनाराच, नाराच संहनन
१२ क्षीणमोह	०	१६ ज्ञाना. ५, दर्शना. ४, अंतराय ५ निद्रा, प्रचला
१३ सयोगकेवली	१ सातावेदनीय	२९ औदा. द्विक, तैजसद्विक, वज्रर्षभनाराच ६ संस्थान, वर्णादि ४, अगुरुलघुचतुष्क विहायोगति २, स्थिर २, शुभ २, स्वर २, निर्माण, प्रत्येक
१४ अयोगकेवली	०	१३ वेदनीय २, मनुष्यगति, पंचेंद्रिय, त्रस, बादर, पर्याप्त, सुभग, आदेय, यश तीर्थंकर, मनुष्यायु, उच्चगोत्र

५

उदयव्युच्छित्ति के पूर्व बंधव्युच्छिन्न प्रकृतियां

		बं.गु.	उ.गु.
१४	ज्ञाना ५, दर्शना ४, अंतराय ५	१४	१२
३	स्थानत्रिक	२	६
२	निद्रा, प्रचला	८	१२
१	सातावेदनीय	१३	१४
१	असातावेदनीय	६	१४
१	संज्वलन लोभ	९	१०
१	स्त्रीवेद	२	९
१	नपुंसकवेद	१	९
२	अरति, शोक	६	८
३	नरकद्विक, नरकायु	१	४
४	तिर्यंचद्विक, तिर्यंचायु, उद्योत	२	५
२	मनुष्यगति, मनुष्यायु	४	१४
१	पंचेन्द्रिय जाति	८	१४
२	औदारिक द्विक	४	१३
१०	तैजसद्विक, वर्णादि ४, अगुरु ४	८	१३
१	संस्थान समचतुरस्त्र	८	१३
४	बीचके चार संस्थान	२	१३
१	हुंडकसंस्थान	१	१३
१	वज्रर्षभनाराच संहनन	४	१३
२	वज्रनाराच, नाराच	२	११
२	अर्धनाराच कीलक	२	७
१	असंप्राप्तासृपाटिका	१	६
२	अप्रशस्त विहायोगति, दुस्वर	२	१३
२	प्रशस्त " सुस्वर	८	१३
७	त्रसत्रिक, तीर्थंकर, सुभग, आदेय यश	८	१४
४	प्रत्येक, स्थिर, शुभ, निर्माण	८	१३
२	अस्थिर, अशुभ	९	१३
२	दुर्भग, अनादेय	२	४
१	नीचगोत्र	२	५
१	उच्चगोत्र	१०	१४
८९			

उदयव्युच्छित्ति के पश्चात् बंधव्युच्छिन्न प्रकृति

		बं.गु.	उ.गु.
१	देवायु, देवचतुष्क	७	४
४	देवचतुष्क	८	४
१	आहारक द्विक	८	६
१	अयशस्कीर्ति	९	४
८			

उदयव्युच्छित्ति के साथ बंधव्युच्छिन्न प्रकृति

		बं.गु.	उ.गु.
२	मिथ्यात्व, आतप	१	१
४	स्थावरचतुष्क	१	१
४	एकेन्द्रियादि ४ जाति	१	१
४	अनन्तानुबन्धी	२	२
४	अप्रत्याख्यानावरण	४	४
४	प्रत्याख्यानावरण	५	५
३	संज्वलन क्रोध, मान, माया	९	९
४	हास्य, रति, भय, जुगुप्सा	८	८
१	पुरुषवेद	९	९
१	मनुष्यानुपूर्व्य	४	४
३१			

स्वोदयबन्धी		परोदयबन्धी		स्वपरोदयबन्धी	
प्र.सं.	~~ध्रुवबन्धी प्र~~	प्र.सं		प्र.सं	
५	ज्ञानावरण	१	देवायु	५	स्त्यानगृद्ध्यादि ५ निद्रा
४	दर्शनावरण	१	नरकायु	2	वेदनीय
५	अंतराय	६	वैक्रियिकषट्क (वैक्रियिक द्विक, देवद्विक नरकद्विक)	२५	चारित्रमोहनीय
१	मिथ्यात्व			2	तिर्यंचायु, मनुष्यायु
१२	कषाय तैजसकार्मणश.			2	तिर्यंचगति, तिर्यंचानुपूर्वी
४	वर्ण, गंध, रस, स्पर्श	2	आहारक शरीर, आहारक अंगोपांग	2	मनुष्यगति, मनुष्यानुपूर्वी
2	स्थिर, अस्थिर			५	एकेन्द्रियादि ५ जाति
2	शुभ, अशुभ	१	तीर्थंकर	2	औदारिक द्विक
१	अगुरुलघु			६	संस्थान,
१	निर्माण			६	संहनन
				५	उपघात, परघात, आतप उद्योत, उच्छ्वास
				2	विहायोगति
				४	त्रस, बादर, पर्याप्त, प्रत्येक
				४	स्थावर, सूक्ष्म, अपर्याप्त साधारण
				४	सुभग, सुस्वर, आदेय, यश
				४	दुर्भग, दुस्वर, अनादेय, अयश
				2	गोत्र (उच्च, नीच)
२७		११		८२	

१) देव देवगतिका बन्ध नही करते हैं और नारकी नरकगतिका बन्ध नही करते अतः देवायु, नरकायु और वैक्रियिकषट्क इनका बन्ध मनुष्यगति अथवा तिर्यंचगतिके उदयमें ही होता है इसलिए परोदयी बन्धी है।

2) आहारकद्विकका बंध ७वे गुणस्थानसे ८वे के छठे भागतक ही होता है और आहारक द्विकका उदय छठे गुणस्थानमें ही होता है अतः परोदयी बन्धी है।

3) तीर्थंकर प्रकृतिका बंध चौथे गुणस्थानसे ८वे के छठे भागतक ही होता है और उदय १३ वे, १४ वे गुणस्थानमें होता है इसलिए परोदयीबन्धी है।

५०४-५०७

निरन्तर बन्धी		सान्तर बन्धी		सान्तर निरन्तर बन्धी	
प्र. संख्या	ध्रुवबन्धी ४७ प्रकृति	प्र. सं		प्र. सं.	
				१	सातावेदनीय
५	ज्ञानावरण	१	असातावेदनीय	३	पुरुषवेद, हास्य, रति
९	दर्शनावरण	२	नपुंसकवेद, स्त्रीवेद	२	तिर्यंचद्विक
५	अंतराय	२	शोक, अरति	२	मनुष्यद्विक
१	मिथ्यात्व	२	नरकगति, आनुपूर्वी	२	देवद्विक
१६	कषाय	४	एकेन्द्रियादि चार जाति	१	पंचेन्द्रियजाति
२	भयजुगुप्सा	५	प्रथम बिना ५ संहनन	२	औदारिक द्विक
४	वर्णादि	५	" " ५ संस्थान	२	वैक्रियिक द्विक
२	तैजस, कार्मण	१	अप्रशस्त विहायोगति	१	समचतुरस्र संस्थान
२	अगुरुलघु, उपघात	२	आतप, उद्योत	१	वज्रर्षभनाराच संहनन
१	निर्माण	१०	स्थावरदशक	२	परघात, उच्छ्वास
	अध्रुवबन्धी ७ प्रकृति		स्थावर, सूक्ष्म, साधारण,	१	प्रशस्तविहायोगति
१	तीर्थंकर		अपर्याप्त, अस्थिर, अशुभ,	१०	त्रसदशक
२	आहारकद्विक		दुर्भग, दुस्वर, अनादेय.	२	गोत्रद्विक
४	आयु		अयशस्कीर्ति		
५४		३४		३२	

१) निरन्तरबन्धी प्रकृतियोंमे ४७ ध्रुवबन्धी प्रकृति है उनका बन्ध अपनी अपनी बन्ध व्युच्छित्तिपर्यन्त सदा होता है।

२) तीर्थंकर और आहारकद्विक अध्रुवबन्धी है किन्तु इनका बंध जिन गुणस्थानोंमे हो सकता है उन गुणस्थानोंमे बन्ध प्रारंभ होनेपर सदा होता है अतः ये निरन्तरबन्धी है।

३) आयुका बन्धकाल एक अंतर्मुहूर्त है। जिस कालमें आयुका बन्ध होना योग्य है उसकालमें आयुबन्ध प्रारम्भ होनेपर अंतर्मुहूर्त तक प्रतिसमय निरन्तर एकही आयुका बन्ध होता है। अतः आयुको निरन्तरबन्धी कहा है।

४) सान्तरनिरन्तर ३२ प्रकृतियोंमे जिन प्रकृतियोंके प्रतिपक्षी प्रकृतिका बंध जबतक संभव हो तबतक वे सान्तरबन्धी है और प्रतिपक्षी प्रकृतिकी बन्धव्युच्छित्ति होनेपर उन प्रकृतियोंका निरन्तर बन्ध होगा। स्वजातीय अन्यप्रकृतिका बंध जहां होता है वहा वह प्रकृति सप्रतिपक्षी कहलाती है वहां वह सान्तरबन्धी होती है और जहा केवल अपना ही बंध होता हो वहा उसे निष्प्रतिपक्षी कहते है और वहां वह निरंतरबन्धी होती है अपनी व्युच्छित्तिपर्यन्त निरंतर बन्ध होता है। जैसे अन्यगतिका जहां बन्ध पाया जाता है वहां देवगति सप्रतिपक्षी है वहा कभी अन्य गतिका अथवा कभी देवगतिका बन्ध होता है। अन्यगतियोंकी बन्धव्युच्छित्ति होनेपर निरन्तर देवगतिका बन्ध होता है। अतः देवगतिको उभयबन्धी कहा है।

कृति सं.	उभयबन्धी प्रकृति	प्रतिपक्षी प्रकृति नाम	सान्तरबन्ध कहां	निरन्तरबन्ध कहांपर होता है
1	सातावेदनीय	असातावेदनीय	६ ठे गुणस्थानतक	सातवे से तेरहवे गुणस्थानपर्यंत
1	हास्य	शोक	६ ठे गुणस्थानतक	सातवे से आठवे के अन्तिम भागपर्यंत
1	रति	अरति	"	" " "
1	पुंवेद	नपुंसकवेद स्त्रीवेद	1 } दूसरे गुणस्थान 2 } तक	तीसरे से नववे के प्रथम भागपर्यंत
2	तिर्यंचद्विक	नरकद्विक, मनुष्यद्विक देवद्विक	दूसरे गुणस्थान पर्यंत	सातवे नरकमें 1-2 गुणस्थानमें, तेजकायिक, वायुकायिक में निरन्तर तिर्यंचगतिका ही बंध होता है
2	मनुष्याद्विक	नरक, तिर्यंच, देवद्विक	दूसरे गुणस्थान तक	देव नारकीमें 1 से 4 थे गुणस्थानमें और 9 उवे स्वर्गसे सर्वार्थसिद्धि पर्यंत सब गुणस्थानोंमें
2	देवद्विक	नरक, तिर्यंच, मनुष्य द्विक	चौथे गुणस्थानतक	सामान्य विवक्षासे पु वे मे किन्तु मनुष्य तिर्यंचमे तीसरेसे ८ वे के छठेभागतक और भोगभूमिमें देवद्विकका निरन्तरबन्ध
1	पंचेन्द्रियजाति	एकेन्द्रियादि ४ जाति	प्रथम गुणस्थानतक	दूसरे से ८ वे के छठेभागतक
2	औदारिकद्विक	वैक्रियिकद्विक	चौथे मनुष्य तिर्यंचमे दूसरे गुणस्थानतक	नरक व देवगतिमें निरन्तर बन्ध सर्व गुणस्थानोंमे.
2	वैक्रियिकद्विक	औदारिकद्विक	चौथे गुण. तक मनुष्य तिर्यंचमें दूसरे तक	तीसरे गुणस्थानसे ८ वे के छठेभागतक और भोगभूमिमें
1	समचतुरस्रसंस्थान	अन्य ५ संस्थान	दूसरे तक	तीसरे गुणस्थानसे ८ वे के छठेभागतक
1	वज्रर्षभनाराचसंहनन	अन्य ५ संहनन	" "	तीसरे व चौथे गुणस्थानमें
2	परघात, उच्छ्वास	अपर्याप्त	अपर्याप्तका बन्ध होते प्रथम गुण में.	दूसरे गुणस्थानसे ८ वे के छठेभागतक
1	प्रशस्तविहायोगति	अप्रशस्तविहायोगति	2 रे गुणस्थानतक	तीसरे से ८ वे के छठेभागतक
1	त्रस	स्थावर	प्रथम "	दूसरेसे ८ वे के छठेभागतक
1	बादर	सूक्ष्म	" "	" " "
1	पर्याप्त	अपर्याप्त	" "	" " "
1	प्रत्येक	साधारण	" "	" " "

क्र.सं.	उभयबन्धी प्रकृति	प्रतिपक्षी प्रकृतिनाम	कहांपर सान्तरबन्ध	कहांपर निरन्तर बन्ध
१	स्थिर	अस्थिर	६ ठे गुणस्थानतक	७ वे से आठवेके छठे भागतक
१	शुभ	अशुभ	६ ठे "	" " "
१	सुभग	दुर्भग	२ रे "	तीसरे से आठवेके छठे भागतक
१	सुस्वर	दुःस्वर	२ रे "	" "
१	आदेय	अनादेय	२ रे "	" "
१	यशस्कीर्ति	अयशस्कीर्ति	६ ठे "	७ वे से १० वे गुणस्थानतक
१	नीचगोत्र	उच्चगोत्र	२ रे "	सातवे नरकमे १.२ गुणस्थानमे और तेजोकायिक वायुकायिकमे
१	उच्चगोत्र	नीचगोत्र	२ रे "	तीसरे से दसवे गुणस्थानतक
३२				

१) आतप मिथ्यादृष्टिमें अपर्याप्तका बन्ध होनेपर सप्रतिपक्षी है क्योंकि अपर्याप्तका बन्ध होनेपर इसका बन्ध नही होता

२) भोगभूमिमें दूसरी किसी गतिका बन्ध नही होता इसलिए देवद्विक, वैक्रियिकद्विक और उच्चगोत्रका वहां निरन्तर बन्ध होता है।

३) सप्तम नरकके नारकीको प्रथम द्वितीय गुणस्थानमें तिर्यंचगतिकाही निरन्तर बन्ध होता है क्योंकि मरकर वे तिर्यंचमे ही उत्पन्न होते है।

४) तेजोकायिक और वायुकायिक जीव नियमसे तिर्यंचगतिमें ही उत्पन्न होते है अतः उनको तिर्यंचद्विक और नीचगोत्रका निरन्तर बन्ध होता है।

५) तेरहवे स्वर्गसे लेकर ऊपरके देव मनुष्यगतिमेंही उत्पन्न होते है अतः वे मनुष्यद्विक, औदारिकद्विक और उच्चगोत्रका निरन्तर बन्ध करते है।

गा.४०९ द्वितीय पंचभागहारचूलिका

शुभ अशुभ कर्म जीवोंके परिणामोंके निमित्तसे अन्यप्रकृतिरूप परिणमित होते है उसे संक्रमण कहते है। एक समयमें कितने परमाणु अन्य प्रकृतिरूप होते है उसका प्रमाण लानेके लिए सत्त्वद्रव्यको किसी संख्यासे भाग दिया जाता है उसे भागहार कहते है। संक्रमणके प्रकरणमें ये भागहार पांच प्रकारके है →

भागहार ५ प्रकारके – १) उद्वेलन २) विध्यात ३) अधःप्रवृत्त ४) गुणसंक्रमण ५) सर्वसंक्रमण

इन भागहारोंके निमित्तसे संक्रमण भी पांच प्रकारका कहा जाता है।

बन्धके मूलप्रत्यय चार - १) मिथ्यात्व २) असंयम , ३) कषाय ४) योग

उत्तरप्रत्यय ५७

५ मिथ्यात्व → एकांत, अज्ञान, विपरीत, वैनयिक, सांशयिक

१२ असंयम → ६ इन्द्रिय असंयम , ६ प्राणी असंयम

२५ कषाय → १६ कषाय , ९ नोकषाय

१५ योग → ४ मनोयोग , ४ वचनयोग , ७ काययोग

५७ कुल — सत्य, असत्य, उभय, अनुभय ¹औदारिक ²औदारिक मिश्र ३) वैक्रियिक , ४) वैक्रियिक मिश्र , ५) आहारक, ६) आहारक मिश्र ७) कार्मण काययोग

गुणस्थान	उत्तर प्रत्यय सं.	उत्तर प्रत्ययोंका विवरण
१ मिथ्यात्व	५५	उपर्युक्त ५७ - 2 आहारक, आहारक मिश्र के बिना
२ सासादन	५०	५५ - ५ मिथ्यात्व
३ मिश्र	४३	५० - ७ अनंतानुबंधी ४, औ. मिश्र, वै. मिश्र, कार्मण
४ असंयत	४६	४३ + 3 औ. मिश्र, वै. मिश्र, कार्मण
५ देशसंयत	३७	४६ - ९ अप्रत्याख्यान ४, औ. मिश्र, वैक्रि, वै. मिश्र, कार्मण, त्रस असंयम
६ प्रमत्तसंयत	24	३७ - १३ असंयम, प्रत्याख्यानावरण ४, १५ कम करनेपर 22 हुए उसमें दो मिलाए 24 22 + 2 आहारक, आहारक मिश्र
७ अप्रमत्त	22	24 - 2 आहारक, आहारक मिश्र
८ अपूर्व	22	" " "
९ अनिवृत्ति १	१६	22 - ६ नोकषाय
भा. 2	१५	१६ - १ नपुंसकवेद
3	१४	१५ - १ स्त्रीवेद
४	१३	१४ - १ पुंवेद
५	१२	१३ - १ संज्वलन क्रोध
६	११	१२ - १ " मान
७	१०	११ - १ " माया
१० सूक्ष्मसांपराय	१०	उपर्युक्त

११	उपशान्त मोह	१	१०-१ संज्वलन लोभ
१२	क्षीणमोह	१	"
१३	सयोगकेवली	७	सत्य, अनुभय मनोयोग, वचनयोग, औ. औ. मिश्र कार्मण काययोग

१) आहारक काययोग और आहारक मिश्र काययोग केवल छठे गुणस्थानमें ही होता है।
२) औदारिक मिश्र, वैक्रियिक मिश्र और कार्मण काययोग अपर्याप्त अवस्थामें ही होते है अतः प्रथम, द्वितीय और चतुर्थ गुणस्थानमें पाये जाते है। केवली समुद्घातकी अपेक्षा १३ वे गुणस्थानमें औदारिक मिश्र और कार्मण काययोग पाया जाता है।
३) पांचवे गुणस्थानमें केवल एक त्रसवधका त्याग किया है इसलिए त्रस १ विरति है शेष ११ असंयम विद्यमान है।
४) गुणस्थानानुसार जैसे जैसे मिथ्यात्व, कषाय और नोकषायोंके उदयका अभाव हो जाता है उतने उतने प्रत्यय कम होते जाते है। ग्यारहवे गुणस्थानमें सत्तामें कषाय होनेपरभी उदयमें एक भी कषाय न होनेसे कषायप्रत्ययसे बंध नही होता।

मिथ्यात्व	४	मिथ्यात्व, असंयम, कषाय, योग
2, 3, ४	3	असंयम, कषाय, योग
५ देशसंयत	3	विरताविरत मिश्र, कषाय, योग
६, ७, ८, ९, १०	2	कषाय, योग
११, १२, १३	१	योग

एक समयमें एक जीवके पाये जानेवाले उत्तरप्रत्यय

मिथ्यात्व गुणस्थान — १ मिथ्यात्व
2 असंयम एक इन्द्रियसे एक कायकी विराधना
3 कषाय अनंतानुबंधीको छोडकर शेष 3
१ वेद कोईभी १
2 हास्ययुगल/शोकयुगल
१ योग
जघन्यसे १०

एक इन्द्रियसे एक कायकी विराधना करता है अथवा २ कायकी विराधना अथवा ३/४/५/६ कायकी विराधना करता है अत: एक जीवके एक समयमें असंयम के भेदोंमेंसे २/३/४/५/६/७ असंयम पाये जाते हैं। अनंतानुबंधी की विसंयोजना करके मिथ्यात्व गुणस्थानको प्राप्त हुए जीवके उपर्युक्त प्रकारसे एकसाथ १०, ११, १२, १३, १४, १५, प्रत्यय पाये जाते हैं। भय अथवा जुगुप्सा का उदय हो तो इनमें एक-एक बढ़ेगा और भय जुगुप्सा दोनों का उदय हो तो दो-दो प्रत्यय बढ़ेंगे इसलिए १०, ११, १२, १३, १४, १५, १६, १७ प्रत्यय होते हैं।

अनंतानुबंधी कषाय की विसंयोजनासे रहित जीवकी अपेक्षा एक-एक अनंतानुबंधी कषाय बढ़नेसे उपर्युक्त प्रत्ययोंमें एक-एक प्रत्यय बढ़नेसे ११, १२, १३, १४, १५, १६, १७, १८ प्रत्यय होते हैं।

गुणस्थान	जघन्य प्रत्यय	उत्कृष्ट प्रत्यय	प्रत्ययोंका विवरण
मिथ्यात्व	१०	१८	
सासादन	१०	१७	एक मिथ्यात्व प्रत्यय कम हुआ
मिश्र	९	१६	सासादन के प्रत्यय में से १ अनंतानुबंधी कषाय कम करना
असंयत	९	१६	" " "
देशसंयत	८	१४	९-१ अप्रत्याख्यान कषाय=८, १६-२ अप्र. कषाय, असंयम १४
प्रमत्तसंयत	५	७	८-३ दो असंयम, प्रत्याख्यान कषाय = ५ भय या जुगुप्सा सहित ६ प्रत्यय, भयजुगुप्सा दोनों सहित ७ प्रत्यय
अप्रमत्त	५	७	प्रमत्तसंयत के समान
अपूर्वकरण	५	७	" "
अनिवृत्तिकरण	२	३	२ = संज्व. कषाय १, योग १, ३ = २+१ वेद
सूक्ष्मसांपराय	२	२	२ " लोभ "
उपशांतमोह	१	१	योग
क्षीणमोह	१	१	"
सयोगकेवली	१	१	"

किस गतिसे संयुक्त बंध होता है —

1) मिथ्यात्वमें → चारों गतिसे संयुक्त, उच्चगोत्रका = मनुष्य देव गतिसहित
यशस्कीर्तिका 3 गति सहित (मनुष्य, तिर्यंच देव गतिसहित)

2) सासादनमें → नरकगति छोडकर 3 गतिसहित, उच्चगोत्र दो गतिसहित, यशकी 3 गतिसहित

3) मिश्र, असंयतमें → दो मनुष्य और देवगति संयुक्त

4) देशसंयतसे अपूर्वकरणके छठे भागतक - एक देवगतिसंयुक्त

5) इससे ऊपर → अगतिसंयुक्त

मिथ्यात्व गुणस्थानमें →

१४=5 ज्ञानावरण, 4 दर्शनावरण, 5 अंतरायका - सादि, अनादि, ध्रुव, अध्रुव बंध होता है

2 यशस्कीर्ति और उच्चगोत्रका - सादि, अध्रुव बंध होता है।

शेष गुणस्थानमें उपर्युक्त १४ प्रकृतियोंका → सादि, अनादि, अध्रुव बंध है।

सादिबंध – विवक्षित बंधका बीचमें अभाव होकर पुनः जो बंध होता है वह सादि बन्ध है।

अनादिबंध – अनादिकालसे जिसके बंधका अभाव नहीं हुआ वह अनादिबंध है।

ध्रुवबंध – जिस बंधका अभाव नहीं होगा वह ध्रुवबंध है। ध्रुवबंधी प्रकृतियोंका अभव्यकी अपेक्षा ध्रुवबंध है।

अध्रुवबंध → जिस बंधका अभाव होता है वह अध्रुवबंध है।

पृ.१४

देशावधि तीन प्रकारका - 1) जघन्य, 2) उत्कृष्ट और 3) अजघन्यानुत्कृष्ट
द्रव्य, क्षेत्र, काल और भावके भेदसे विषय चार प्रकारका है।

जघन्य देशावधिका द्रव्य विषय → विस्रसोपचयसहित औदारिक शरीर
घनलोक

यहां जघन्य और उत्कृष्टको छोडकर जिनदृष्ट मध्यम औदारिक शरीर लेना।

जघन्य अवधिज्ञानका विषयभूत द्रव्य एक ही प्रकारका नहीं है। ऊपर जो द्रव्यविषय बताया है वह सबसे जघन्य लेना उपर्युक्त स्कन्धमें एक परमाणुभी कम हो तो उसे जघन्य देशावधि नहीं जान सकता। लेकिन इसके ऊपर एक, दो, तीन, संख्यात, असंख्यात, अनन्त आदि परमाणु अपने क्षेत्रमें अवस्थित अधिक स्कंधको जान सकता है। इसलिए जघन्य अवधिज्ञानके द्रव्यके अनन्त विकल्प बन सकते है।

जैसे जघन्य द्रव्य विषयभूत स्कंधमें परमाणुओं की संख्या १०० मानी और उत्कृष्ट द्रव्यविषयभूत स्कंधमें " संख्या १००० मानी। अतः जघन्य देशावधिज्ञान १००, १०१, १०२, १०३ . . . . १००० परमाणुओंके स्कंधको जान सकता है। ९९, ९८, ९७ इत्यादी परमाणुओंके स्कंधको और १००१, १००२ आदिको नहीं जान सकता

जघन्य देशावधिज्ञानके विषयभूत क्षेत्रके भीतर स्थित स्कंधको ही जान सकता है उस क्षेत्रसे बाहर स्थित रूपी द्रव्यको वह नहीं जान सकता उस क्षेत्रमें ठहरे हुए स्कंधसे संबंधित ही परमाणू हो लेकिन क्षेत्रकी मर्यादासे बाहर स्थित हो उसको जघन्य देशावधि नहीं जान सकता।

जघन्य देशावधिके द्रव्यविकल्प १०० से १००० तक कुल ९०१ हुये। ऐसे ही वास्तविक गणितमें अनन्त विकल्प जानना।

जहां जिस अवधिका जो द्रव्यविषय बताया है वहां वह अवधि उससे छोटे स्कंधको नहीं जान सकता है उससे बडे स्कंधको अपने क्षेत्रके भीतर हो उसको जान सकता है ऐसा समझना।

पृ.१६

जघन्य देशावधिका क्षेत्रप्रमाण → उत्सेध घनांगुल
पल्यका असंख्यातवा भाग

सूक्ष्म निगोद जीवकी जघन्य अवगाहना जघन्य देशावधिका क्षेत्र विषय है। जीवकाण्ड जीवसमास प्ररूपणामें ६४ अवगाहनाओंका चार्ट देखो।

पृ29

सूक्ष्म निगोद अवगाहना × $\frac{\text{पल्य}}{\text{असंख्यात}}$ = संख्यात घनांगुल प्रमाण महामत्स्य की अवगाहना

$\frac{\text{घनांगुल}}{\text{पल्य का असंख्यातवा भाग}}$ × पल्य का असंख्यातवा भाग = संख्यात घनांगुल

भागहारभूत पल्यके असंख्यातवे भागसे गुणकारभूत पल्यका असंख्यातवा भाग संख्यात गुणा है इसलिए उनका अपवर्तन करनेपर संख्यात लब्ध आता है भाज्यराशि में घनांगुल है अतः संख्यात घनांगुलप्रमाण महामत्स्यकी अवगाहना आती है।

जघन्य अवगाहना से उत्कृष्ट अवगाहनातक जितने गुणकार है उनका परस्पर में गुणा करनेपर पल्योपमका असंख्यातवा भाग ही लब्ध आता है उससे अधिक नहीं। क्यों कि यदि जघन्य अवगाहना का प्रतरांगुल अथवा संख्यात प्रतरांगुल होता तो उपर्युक्त गुणकारोंका गुणनफल सूच्यंगुल अथवा सूच्यंगुलका संख्यातवा भाग हो सकता था।

जैसे संख्यातप्रतरांगुल × $\frac{\text{सूच्यंगुल}}{\text{संख्यात}}$ = संख्यात घनांगुल

संख्यात प्रतरांगुल × सूच्यंगुल = संख्यात घनांगुल

प्रतरांगुल × संख्यात सूच्यंगुल = संख्यात घनांगुल

लेकिन सूक्ष्म निगोद जीवकी जघन्य अवगाहनाका प्रमाण घनांगुलका असंख्यातवा भाग बताया है उससे उक्त गुणकारोंका गुणनफल पल्योपमका असंख्यातवा भागप्रमाण है ऐसा जानना। यदि गुणनफल सूच्यंगुल अथवा संख्यात सूच्यंगुल माने तो

$\frac{\text{घनांगुल}}{\frac{\text{पल्य}}{\text{असंख्यात}}}$ × सूच्यंगुल = असंख्यात घनांगुल

महामत्स्यकी अवगाहना असंख्यात घनांगुल होनेका प्रसंग आता है

सूक्ष्म निगोद जीवकी जघन्य अवगाहना घनांगुलके संख्यातवें भागप्रमाण अथवा आवली के असंख्यातवें भागसे भाजित घनांगुलप्रमाण माने तो महामत्स्यकी अवगाहना असंख्यात घनांगुलप्रमाण होनेका प्रसंग आता है।

$\frac{\text{घनांगुल}}{\text{संख्यात}}$ × पल्योपमका असंख्यातवा भाग = असंख्यात घनांगुल

$\frac{\text{घनांगुल}}{\text{आवली का असंख्यातवा भाग}}$ × पल्योपम का असंख्यातवा भाग = असंख्यात घनांगुल

संख्यात का ~~भाग~~ पल्योपमके असंख्यातवें भागमें भाग देनेपर असंख्यातही लब्ध आता है और आवली के असंख्यातवें भाग का भी पल्योपम के असंख्यातवें भागमें भाग देनेपर असंख्यातही लब्ध आता है। आवली का असंख्यातवां भाग पल्योपम के असंख्यातवें भाग से बहुत छोटी (असंख्यातवाँभाग) है।

उत्सेध × विष्कम्भ × आयाम = जघन्य अवधिक्षेत्र

$\frac{\text{सूच्यंगुल}}{\text{असंख्यात}}$ × $\frac{\text{सूच्यंगुल}}{\text{असंख्यात}}$ × $\frac{\text{सूच्यंगुल}}{\text{असंख्यात}}$ = $\frac{\text{घनांगुल}}{\text{असंख्यात}}$

पृ 22

अवधिज्ञानी जीव और उसके द्वारा ग्रहण किये जानेवाले द्रव्यके बीचमें जो क्षेत्रका अंतर है उसीको कोई आचार्य जघन्य अवधिज्ञानका क्षेत्र मानते है वह घटित नहीं होता क्यों कि उन दोनोंके बीचमें अंतर एक अंगुल दो अंगुल, संख्यात अंगुल आदि पाया जा सकता है। ऐसा माननेपर जघन्य अवधिज्ञानका क्षेत्र जघन्य अवगाहनासे असंख्यातगुणा होने का प्रसंग आता है।

गा. ४०४-४०७

		परम उत्कृष्ट विकल्प ध्रुवहार	कार्मणवर्गणा	व/९	लोक ≡
१९	को ण वि शा	द्वियरम	कार्मणवर्गणा	व	
१८	अष्टादश	विस्रसोपचयरहित एक कार्मणसमयप्रबद्ध			पूर्वक्षेत्र x असंख्यात द्वी= स= ७१६
१७	सप्तदश	विस्रसोपचयरहित मनोवर्गणा			पूर्वक्षेत्र x असंख्यात द्वी= स= ७१५
१६	षोडश	"	भाषावर्गणा		पूर्वक्षेत्र x असंख्यात द्वी= स= ७१४
१५	पंचदश	"	तैजसवर्गणा		पूर्वक्षेत्र x असंख्यात द्वी= स= ७१३
१४	चतुर्दश	विस्रसोपचयसहित कार्मणशरीर			पूर्वक्षेत्र x असंख्यात द्वी= स= ७१२
१३	त्रयोदश	विस्रसोपचयसहित तैजसशरीर			असंख्यात द्वीपसमुद्र द्वी= स= ७
१२	द्वादश				संख्यातद्वीपसमुद्र द्वी= स= २
११	एकादश				रूचकद्वीप रू.
१०	दशम				मनुष्यलोक ४५ ल
९	नवम				जम्बूद्वीप जं=
८	अष्टम				भरतक्षेत्र भर
७	सप्तम				पच्चीस योजन यो. २५
६	षष्ठ				एक योजन यो. १
५	पंचम				एक कोस को. १
४	चतुर्थ				एक हाथ हस्त १
३	तृतीय				घनांगुल पृथक्त्व पृ ६
२	द्वितीय				घनांगुल ६
१	प्रथम काण्डक	उत्कृष्ट अन्तिम			घनांगुल ६
					संख्यात २
		तृतीय	द्वितीय विकल्प ध्रुवहार	स ७१२-१६ख/१ = ९१६	
		द्वितीय	जघन्य विकल्प ध्रुवहार	स ७१२-१६ख/१ = ९	
		प्रथम विकल्प	सविस्रसोपचय नोकर्मसंचय लोक	स ७१२-१६ख/१ ≡	घनांगुल ६ असंख्यात ७
	काण्डक संख्या		द्रव्यप्रमाण		क्षेत्रप्रमाण

पल्य – १ समय	प-१	असंख्यातलोक	≡ ∂
पूर्वकालx असंख्यात	वर्ष ∂।६		
पूर्वकालx असंख्यात	वर्ष ∂।५		
पूर्वकालx असंख्यात	वर्ष ∂।४		
पूर्वकालx असंख्यात	वर्ष ∂।3		
पूर्वकाल x असंख्यात	वर्ष ∂।2		० ०
असंख्यात वर्ष	वर्ष ∂		० ०
संख्यात वर्ष	वर्ष १		० ०
वर्षपृथक्त्व	वर्ष पृ		० ०
एक वर्ष	वर्ष १		० ०
कुछ अधिक एकमास	मा १		० ०
अर्धमास	अर्ध मा=		० ०
कुछ कम एक दिवस	दि १–		० ०
भिन्नमुहूर्त	मु १–		० ०
अन्तर्मुहूर्त	२१		० ०
आवलीपृथक्त्व	पृ८		० ०
आवली (घनावली)	८		० ०
			० ०
घनावलीमें कुछ कम	८–		० ०
			० ०
घनावली	८		० ०
संख्यात	१		०
०	०		८८८८ ∂∂∂∂∂
०	०		
०	०	द्वितीयविकल्प x घनावलीका असंख्यातवाभाग	८८८ ∂∂∂∂
०	०	जघन्यविकल्प x घनावलीका असंख्यातवाभाग	८८ ∂∂∂
घनावली	८	घनावली	८
असंख्यात	∂	असंख्यात x असंख्यात	∂∂
कालप्रमाण		भावप्रमाण	

पृ.२६

जघन्य अवधिका काल विषय = $\frac{\text{आवली}}{\text{आवलीका असंख्यातवा भाग}}$

जघन्य अवधिका विषयभूत भाव = $\frac{\text{आवली}}{\text{असंख्यात}}$

एक द्रव्यमें अनन्त गुण हैं। उन अनन्त गुणोंमेंसे प्रत्येक की एक-एक वर्तमान पर्याय होती है इसलिए एक द्रव्यकी अनन्त पर्याये एक समय में होती है उनमें से आवलीके असंख्यातवें भागप्रमाण पर्यायोंको जघन्य देशावधिज्ञान जानता है।

द्वितीय अवधिज्ञान का विषयभूत द्रव्य = $\frac{\text{जघन्य देशावधि का विषयभूत द्रव्य}}{\text{ध्रुवहार}}$

ध्रुवहार का प्रमाण → $\frac{\text{मनोद्रव्यवर्गणा}}{\text{अनन्त}}$

देशावधि परमावधि और सर्वावधि के द्रव्यका प्रमाण लाने के लिए इस भागहार का प्रमाण मेरु के समान निश्चल है इसलिए इसे ध्रुवहार कहते है।

जघन्य देशावधि के द्रव्यको ध्रुवहार का भाग देनेसे द्वितीय देशावधि का द्रव्य विकल्प आता है। इसी को विरलन की विधिसे निकालते है—

ध्रुवहार का विरलन करके उसके ऊपर जघन्य देशावधिके द्रव्यको समखण्ड करके देना। ऐसा करनेपर जो एक विरलनके ऊपर प्राप्त होता है उतने परमाणुओंके स्कन्धको द्वितीय देशावधि ज्ञान जानता है।

जैसे ध्रुवहारका प्रमाण ४ माना, जघन्य देशावधिका द्रव्य ६५५३६ माना।

१६३८४ १६३८४ १६३८४ $\boxed{१६३८४}$ द्वितीय देशावधि का द्रव्य १६३८४
१ १ १ १

जघन्य देशावधि के द्रव्यसे एक, दो, तीन परमाणु आदिकोंसे कम पुद्गल स्कन्धको ग्रहण करनेवाले अवधिज्ञानावरणके क्षयोपशम का अभाव है। पहले द्रव्य विकल्पसे दूसरा द्रव्यविकल्प अनन्तवां भाग ही है। यदि एक परमाणु कम दो परमाणु कम को विषय करनेवाले अलग अलग जानके भेद मानेंगे तो अवधिज्ञानके अनन्त भेद हो जायेंगे किंतु अवधिज्ञानावरणके असंख्यात लोकप्रमाण प्रकृतियां है ऐसा सूत्रमें कहा है उससे जाना जाता है कि एक दो परमाणु आदि

कम स्कन्धको जाननेवाले अवधिज्ञानके द्रव्य विकल्प नहीं है।
द्वितीय देशावधिज्ञान जघन्य देशावधि के द्रव्यसे एक परमाणु आदि कम स्कंधको जानने वर उसको स्थूल विषय है सकता है लेकिन उसका सूक्ष्म विषय प्रथम विकल्पका अनन्तवा भाग ही है।

~~भाव~~ द्वितीय अवधिज्ञान का विषयभूत भाव = भावका प्रथम विकल्प x असंख्यात
द्वितीय अवधिज्ञान प्रथम अवधिज्ञानके भाव विषय से असंख्यात गुणी वर्तमान पर्यायों को जानता है।

द्वितीय देशावधि में क्षेत्र और काल का प्रमाण प्रथम देशावधिके समान ही है। क्यों कि अंगुल के असंख्यातवें भागप्रमाण द्रव्य के विकल्प उत्पन्न होनेपर क्षेत्र में एक प्रदेश की वृद्धि होती है और क्षेत्र में अंगुल के असंख्यातवें भागप्रमाण प्रदेश बढनेपर काल में एक समयकी वृद्धि होती है। इसलिए जहां कालवृद्धि होती है वहाँ द्रव्यादि चारों वृद्धियाँ होती है। जहां क्षेत्रकी वृद्धि होती है वहाँ कालवृद्धि होती भी है और नहीं भी होती है। जहां द्रव्य और भाव की वृद्धि होती है वहाँ क्षेत्र और काल की वृद्धि होती भी है और नहीं भी होती।

तृतीय द्रव्यविकल्प = $\frac{\text{द्वितीय द्रव्यविकल्प}}{\text{ध्रुवहार}}$ तृतीय भावविकल्प = द्वि.भाव x असंख्यात

चतुर्थ द्रव्यविकल्प = $\frac{\text{तृतीय द्रव्यविकल्प}}{\text{ध्रुवहार}}$ चतुर्थ भावविकल्प = तृ.भाव x असंख्यात

इसप्रकार अंगुलके असंख्यातवें भाग प्रमाण द्रव्य और भावविकल्प उत्पन्न होनेपर जघन्यक्षेत्र में एक प्रदेश की वृद्धि होती है।

उसके पश्चात् उतने ही द्रव्यविकल्प और भावविकल्प बीतनेपर क्षेत्रमें और एक प्रदेश बढता है। इसप्रकार क्षेत्रमें अंगुलके असंख्यातवें भागप्रमाण प्रदेश बढनेपर कालमें एक समय बढता है। फिरसे अंगुल के असंख्यातवें भागमात्र द्रव्य और भावके विकल्प बीतनेपर क्षेत्रमें एक प्रदेश बढता है। इस क्रमसे अंगुलके असंख्यातवें भागमात्र क्षेत्रविकल्पोंके बीत जानेपर कालमें एक समय बढ़कर कालका तृतीय विकल्प उत्पन्न होता है।

पृ.३८-३९

शंकाका खुलासा → अंगुलके असंख्यातवें भागमात्र क्षेत्रविकल्पों के बीतनेपर कालमें एक समय बढ़ता है यह बात घटित नहीं होता क्योंकि ऐसा माननेपर उत्कृष्ट क्षेत्र लोक है और उत्कृष्ट काल एक समय कम पल्य है यह घटित नहीं होता वैसा माननेपर या तो क्षेत्रका प्रमाण कम होना चाहिए अथवा कालका प्रमाण असंख्यातगुणा होगा।

जैसे लोकका प्रमाण ५०००, माना, एक समय कम पल्य ५५ माना अंगुलका असंख्यातवा भाग १० माना, जघन्य काल = आवली/असंख्यात का प्रमाण ५ समय माना और जघन्य क्षेत्र = घनांगुल/असंख्यात का प्रमाण ५० प्रदेश माना

प्रथम त्रैराशिक

एक समयके यदि अंगुलके असंख्यातवें भागमात्र क्षेत्रविकल्प प्राप्त होते हैं तो आवली के असंख्यातवें भागसे कम पल्यमें कितने क्षेत्रविकल्प प्राप्त होंगे?

प्रमाण राशि	फलराशि	इच्छाराशि	लब्ध
१ समय	अंगुल/असंख्यात	पल्य − आवली/असंख्यात (−1)	फल × इच्छा / प्रमाण
अंकसंदृष्टि — १	१०	५५ − ५	१० × ५० / १ = ५०० क्षेत्रका प्रमाण

अंगुल/असंख्यात × (पल्य − आवली/असंख्यात) (−1) = असंख्यात घनांगुल

यहांपर असंख्यात भागहार से आवली के असंख्यातवे भागसे हीन पल्य में भाग देनेपर असंख्यात लब्ध आता है। इसप्रकार उत्कृष्ट देशावधि का क्षेत्र लोकप्रमाण प्राप्त न होकर असंख्यात घनांगुल ही प्राप्त होता है।

अंकसंदृष्टि से लोक का प्रमाण ५००० माना है जघन्य क्षेत्र का प्रमाण ५० माना है इसलिए ५००० − ५० = ४९५० क्षेत्रविकल्प आने चाहिए थे लेकिन यहाँ ५०० ही क्षेत्रविकल्प प्राप्त हुये है।

दूसरा त्रैराशिक →

अंगुलके असंख्यातवे भागमात्र क्षेत्रविकल्पोंके बीतनेपर कालका एक समय बढता है तो अंगुल के असंख्यातवें भागसे हीन लोकमें कितनी समयवृद्धि होगी? इसप्रकार त्रैराशिक करनेपर कालका प्रमाण उत्कृष्ट काल एक समय कम पल्यसे असंख्यात गुणा प्राप्त होता है।

प्रमाणराशि	फलराशि	इच्छाराशि	
अंगुल / असंख्यात	१ समय	लोक - घनांगुल / असंख्यात	फल × इच्छा / प्रमाण
अंकसंदृष्टि १०	१	५००० - ५०	१ × ४९५० / १० = ४९५ कालका प्रमाण

$$\frac{\text{लोक} - \frac{\text{घनांगुल}}{\text{असंख्यात}}}{\frac{\text{अंगुल}}{\text{असंख्यात}}} = \frac{\text{लोक}}{\text{असंख्यात}}$$

कालका प्रमाण लेकिन पल्य नहीं आया, पल्य इससे छोटी संख्या है।

यहां कालका प्रमाण ५० आना चाहिये था लेकिन ४९५ आया है इसीप्रकार वास्तविक गणितमें पल्य - $\frac{\text{आवलि}}{\text{असंख्यात}}$ आना चाहिये लेकिन यहां उससे असंख्यात गुणा ऐसा लोकका असंख्यातवा भाग लब्ध आया है। इसलिए अंगुलके असंख्यातवें भागमात्र प्रदेश बढ़नेपर कालमें एक समयकी वृद्धि होती है यह बात घटित नहीं होती। तो कितने प्रदेश बढ़नेपर कालमें एक समयकी वृद्धि होनी चाहिए उसका प्रमाण बताते हैं —

$$\frac{\text{क्षेत्रविशेष (विकल्प)}}{\text{कालविशेष (विकल्प)}} = \text{वृद्धिका प्रमाण}$$

अंकसंदृष्टि

उत्कृष्ट क्षेत्र - जघन्य क्षेत्र = क्षेत्रविकल्प लोक - $\frac{\text{घनांगुल}}{\text{असंख्यात}}$ ५०००-५० = ४९५०

उत्कृष्ट काल - जघन्य काल = कालविकल्प पल्य - $\frac{\text{आवली}}{\text{असंख्यात}}$ ५५ - ५ = ५०

$$\frac{\text{लोक} - \frac{\text{घनांगुल}}{\text{असंख्यात}}}{\text{पल्य} - \frac{\text{आवली}}{\text{असंख्यात}}} = \frac{\text{लोक}}{\text{असंख्यात}} \text{ वृद्धिका प्रमाण}$$

$\frac{४९५०}{५०} = ९९$ वृद्धिका प्रमाण

अर्थात ९९ प्रदेश प्रमाण क्षेत्र वृद्धि होनेपर कालमें एक समय की वृद्धि होनी चाहिए न कि १० प्रदेश बढ़नेपर। अर्थात लोकके असंख्यातवे भागप्रमाण (असंख्यात जगत्प्रतरप्रमाण) प्रदेश बढ़नेपर कालमें एक समय बढ़ना चाहिये ऐसी शंकाकारकी शंका है।

समाधान - सर्वथा ऐसा माननेपर बीचके अवधिज्ञानके क्षेत्रोंकी उत्पत्ति नहीं होती

घनांगुलका संख्यातवा भाग

दुसरे, तिसरे आदि कांडकों में घनांगुल, अंगुलपृथक्त्व, भरतक्षेत्र, जम्बूद्वीप मनुष्यलोक आदि क्षेत्र अवधिज्ञान का विषय बताया है वह नहीं हो सकेगा क्योंकि यहाँपर असंख्यात जगत्प्रतर मात्र क्षेत्रकी वृद्धि होनेपर एक समयकी वृद्धि शंकाकारने स्वीकार की है।

वृद्धिके नियमका अभाव होनेसे उत्कृष्ट क्षेत्र और कालकी उत्पत्ति संभव है। प्रथमतः अंगुलके असंख्यातवें भागमात्र क्षेत्रविकल्पों के बीत जानेपर कालमें एक समय बढ़ता है। वह इसप्रकार

प्रथम कांडकमें जघन्य काल = $\frac{\text{आवली}}{\text{असंख्यात}}$ उत्कृष्ट काल = $\frac{\text{आवली}}{\text{संख्यात}}$

अंकसंदृष्टि ५ समय 25 समय

जघन्य क्षेत्र = $\frac{\text{घनांगुल}}{\text{असंख्यात}}$ उत्कृष्ट क्षेत्र = $\frac{\text{घनांगुल}}{\text{संख्यात}}$

१० समय ९० समय

उत्कृष्ट काल − जघन्य काल = कालकी वृद्धि

$\frac{\text{आवली}}{\text{संख्यात}} - \frac{\text{आवली}}{\text{असंख्यात}} = \frac{\text{आवली}}{\text{संख्यात}}$ 25 − 5 = 20

उत्कृष्ट क्षेत्र − जघन्यक्षेत्र = क्षेत्रवृद्धि $\frac{\text{क्षेत्रवृद्धि}}{\text{कालवृद्धि}}$ = अवस्थित वृद्धि का प्रमाण

$\frac{\text{घनांगुल}}{\text{संख्यात}} - \frac{\text{घनांगुल}}{\text{असंख्यात}} = \frac{\text{घनांगुल}}{\text{संख्यात}}$ $\frac{80}{20} = 4$

90 − 10 = 80

$\frac{\text{घनांगुल}}{\text{संख्यात}} \div \frac{\text{आवली}}{\text{संख्यात}} = \frac{\text{घनांगुल}}{\text{असंख्यातवा भाग}}$ अवस्थित वृद्धिका प्रमाण

अर्थात घनांगुलके असंख्यातवे भागमात्र प्रदेशों की वृद्धि होनेपर कालमें एक समय बढ़ता है। अंकसंदृष्टिसे ४ प्रदेशोंके बढ़नेपर एक समय बढ़ता है। अनवस्थित वृद्धि माननेपर भी प्रथम विकल्पसे लेकर अंगुलके असंख्यातवे भाग वृद्धिके असंख्यात विकल्प बीतनेपर आगे अंगुलके असंख्यातवें भाग अथवा अंगुलके संख्यातवें भागप्रमाण क्षेत्र विकल्पोंके बीतनेपर कालमें एक समय बढ़ता है।

द्वितीय कांडकमें उत्कृष्ट काल कुछ कम आवली है और उत्कृष्ट क्षेत्र घनांगुल है। वहाँपर भी अंगुलके असंख्यातवें भाग व संख्यातवें भागमात्र

क्षेत्रविकल्पों के बीतनेपर कालमें एक समय बढ़ता है।

कुछ कम आवली – जघन्य काल = कालवृद्धि। इसको विरलन राशि करना

घनांगुल – जघन्य क्षेत्र = क्षेत्रवृद्धि। इसको समखण्ड करके देना।

अर्थात क्षेत्रवृद्धि ÷ कालवृद्धि = क्षेत्रकी अवस्थित वृद्धि का प्रमाण

अनुत्तर विमानवासी देवोंके अवधि का उत्कृष्ट काल = पल्योपम ÷ असंख्यात

उत्कृष्ट क्षेत्र = लोकनाली

$\frac{\text{पल्योपम}}{\text{असंख्यात}} - \frac{\text{घनांगुली}}{\text{असंख्यात}}$ = कालवृद्धि → विरलन राशि

लोकनाली – $\frac{\text{घनांगुल}}{\text{असंख्यात}}$ = क्षेत्रवृद्धि → देयराशि

जघन्य क्षेत्रसे हीन जघन्य आदि अध्वानका अर्थ घनांगुलके असंख्यातवें भागसे हीन लोकनाली लेना।

क्षेत्रवृद्धि ÷ कालवृद्धि = असंख्यात जगत्प्रतर

इसलिए सभी जगह अवस्थित वृद्धि नहीं है। कहींपर घनांगुलके असंख्यातवें भाग, कहींपर घनांगुलके संख्यातवें भाग, कहींपर घनांगुल, कहींपर घनांगुल के वर्ग, कहींपर जगत्श्रेणी, कहींपर जगत्प्रतर, कहींपर असंख्यात जगत्प्रतरमात्र क्षेत्रवृद्धि होनेपर एक समय बढ़ता है ऐसा जानना चाहिये।

जहांपर जो वृद्धि संभव है वहांपर वह वृद्धि जानना। जैसे घनांगुल प्रमाण क्षेत्र होनेतक अंगुलका असंख्यातवा भाग अथवा संख्यातवा भाग वृद्धि ग्रहण करना वहां घनांगुलादि वृद्धिका प्रमाण संभव नहीं है। आगे योजनादि क्षेत्रतक घनांगुल, घनांगुलका वर्ग आदि वृद्धि संभव है। इसप्रकार क्षेत्रके बढ़ते जानेपर वृद्धिका प्रमाण बढ़ाते जाना।

पृ. ३४ ~~जबतक~~ द्विचरम समान वृद्धि प्राप्त होनेतक इसीप्रकार ले जाना चाहिये।

समानवृद्धि → जिस स्थानमें चारोंकी (द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव) युगपत् वृद्धि होती है उसकी समान वृद्धि ऐसी संज्ञा है। उसमें चरम समान वृद्धिको छोड़कर उससे नीचेकी वृद्धि द्विचरम समान वृद्धि है।

१७	१	५	१७	चरम समान वृद्धि
१६	–	–	१६	
१५	८	–	१५	
१४	–	–	१४	
१३	७	४	१३	द्विचरम समान वृद्धि
१२	–	–	१२	
११	६	–	११	
१०	–	–	१०	०
९	५	३	९	०
८	–	–	८	०
७	४	–	७	०
६	–	–	६	
५	३	२	५	प्रथम समान वृद्धि
४	–	–	४	
३	२	–	३	
२	–	–	२	
१	१	१	१	
द्रव्यविकल्प	क्षेत्रविकल्प	कालविकल्प	भावविकल्प	

यहाँपर अंगुलका असंख्यातवा भाग २ माना, द्रव्यविकल्प १७, क्षेत्रविकल्प १ कालविकल्प ५ और भावविकल्प १७ माने।

द्रव्यवृद्धि १६ बार, क्षेत्रवृद्धि ८ बार, कालवृद्धि ४ बार और भाववृद्धि १६ बार हुई

द्विचरम समान वृद्धि के ऊपर कालविकल्प एक ही है। क्षेत्रविकल्प अंगुलके असंख्यातवें भागमात्र, द्रव्य और भावविकल्प क्षेत्रविकल्पोंसे असंख्यात गुणे हैं।

द्विचरम समानवृद्धिके आगेका द्रव्यविकल्प = $\frac{\text{द्विचरम समानवृद्धिका औदारिक द्रव्य}}{\text{ध्रुवहार}}$

" " " भावविकल्प = द्वि. समानवृद्धिका भाव × असंख्यात

इसप्रकार अंगुलके असंख्यातवें भागमात्र द्रव्य और भावविकल्प बीतनेपर क्षेत्रमें एक आकाशप्रदेश बढ़ता है। इस क्रमसे द्विचरम द्रव्यविकल्प तक ले जाना।

देशावधिका द्विचरम द्रव्यविकल्प = $\frac{\text{कार्माण वर्गणा}}{\text{ध्रुवहार}}$

" " भावविकल्प = द्विचरम भावविकल्प × असंख्यात

द्विचरम क्षेत्रमें एक प्रदेश बढ़नेपर लोकप्रमाण उत्कृष्ट क्षेत्र लेना

द्विचरम कालमें एक समय बढ़ानेपर पल्य-1 समय उत्कृष्ट कालका प्रमाण है।

पृ.३६ यहां द्विचरम द्रव्य भेदमें कार्मण समयप्रबद्ध ~~कर्मण~~ और चरम भेदमें कार्मण समयप्रबद्ध को एकबार ध्रुवहारका भाग देनेपर जो लब्ध आता है उतना उत्कृष्ट द्रव्यका प्रमाण माना है वह वीरसेनाचार्यको मान्य नहीं है। उनका कहना है कि सर्वार्थसिद्धि देवोंमें उत्कृष्ट द्रव्य का प्रमाण (लोकके असंख्यातवें भाग) अवधिज्ञानावरण के समयप्रबद्ध को १४ राजूके जितने प्रदेश होते हैं उतनी बार ध्रुवहारका भाग देनेपर ~~आत~~ जो अंतिम प्रमाण आता है उतना है (और सर्वार्थसिद्धिके देवोंका उत्कृष्ट भेद देशावधिके भेदोंके बीचमें आता है) देशावधिका चरम भेद संयमीको होता है उसका द्रव्य प्रमाण समयप्रबद्धमें एकबार ध्रुवहारका भाग पानेंगे तो सर्वार्थसिद्धि देवोंके उत्कृष्ट द्रव्यसे देशावधिके उत्कृष्टद्रव्य अनंतगुणा होनेका प्रसंग आता है। जबकि उत्कृष्ट देशावधिका द्रव्य उससे अनंतगुणा ~~हीन~~ कम होना चाहिए इस कारण जघन्य द्रव्यसे आगे उसके योग्य विकल्पोंके बीत जानेपर विस्रसोपचयसहित औदारिक द्रव्यको छोड़कर विस्रसोपचय रहित कार्मण समयप्रबद्ध को भाज्यराशि बनाना चाहिये।

पृ.३७ विस्रसोपचयसे रहित औदारिक परमाणुओंको ही ध्रुवहार से क्यों भाग नहीं देते? नहीं क्यों कि केवल औदारिक परमाणुओंका प्रमाण ध्रुवहारसे अनन्तगुणा हीन है। क्यों कि ध्रुवहारका प्रमाण मनोद्रव्यवर्गणा का अनन्तवां भाग है। औदारिक वर्गणासे मनोद्रव्य वर्गणा का प्रमाण अनन्तगुणा है। आहारवर्गणा का द्रव्य सबसे कम, उससे अनन्तगुणा तैजस वर्गणाका द्रव्य उससे अनन्तगुणा भाषावर्गणाका द्रव्य, उससे अनन्तगुणा मनोवर्गणा का द्रव्य उससे अनन्तगुणा कार्मण वर्गणा का द्रव्य है ऐसा वर्गणासूत्र है।

पृ.३८ कितने ही आचार्योंकी अपेक्षा ऐसी मान्यता है

जघन्य अवधिक्षेत्र × $\frac{\text{आवली}}{\text{असंख्यात}}$ = द्वितीय क्षेत्र विकल्प

जघन्य काल × $\frac{\text{आवली}}{\text{असंख्यात}}$ = द्वितीय काल विकल्प

अर्थात क्षेत्रमें एक-एक प्रदेश की वृद्धि और कालमें एक-एक समय की वृद्धि करके क्षेत्रविकल्प और कालविकल्प नहीं मानते।

किंतु वह कथन घटित नहीं होता।

यदि पूर्वोक्त व्याख्यान के समान ही क्षेत्रविकल्प और कालविकल्प है तो उत्कृष्ट क्षेत्र और काल असंख्यात लोक मानने का प्रसंग आता है। वह इसप्रकार → आवली के असंख्यातवें भाग के अर्धच्छेदोंसे लोकके अर्धच्छेदों को अपवर्तित करके प्राप्त राशिका विरलन करके प्रत्येक रूपके प्रति आवलिका असंख्यातवा भाग देकर परस्पर गुणा करनेपर लोक उत्पन्न होता है।

जैसे आवली का असंख्यातवा भाग १६ माना, लोक २५६ माना २५६ के अर्धच्छेद ८ में १६ के अर्धच्छेद ४ का भाग देनेपर $\frac{८}{४} = 2$ आता है उसका विरलन कर उसके ऊपर १६ देकर परस्पर गुणा करनेपर २५६ उत्पन्न होते हैं $\begin{matrix}१६ \\ १\end{matrix}\ \begin{matrix}१६ \\ १\end{matrix} = २५६$

किसी भी बड़ी संख्याके अर्धच्छेदों में छोटी संख्याके अर्धच्छेदोंको भाग देनेपर जो राशि आती है उतनी बार छोटी संख्याको रखकर परस्पर गुणा करनेपर बड़ी राशि आती है।

जैसे ८ के अर्धच्छेद ३, ६४ के अर्धच्छेद ६

$\frac{६}{३} = 2$ $\begin{matrix}८ \\ १\end{matrix}\ \begin{matrix}८ \\ १\end{matrix} = ६४$

उपर्युक्त विरलन प्रमाण क्षेत्रविकल्प बीतनेपर अवधिका क्षेत्र असंख्यात लोक गुणा हो जायेगा क्यों कि हर विकल्प में आवली का असंख्यातवा भाग गुणा क्षेत्र बढ़ रहा है।

पल्योपम के असंख्यातवें भाग मात्र विकल्पों के बीतनेपर ही अवधिक्षेत्र असंख्यात लोक मात्र हो गया। क्षेत्रविकल्प लोक-घनांगुल का असंख्यातवा भाग है। इसीप्रकार देशावधि का उत्कृष्ट काल असंख्यात लोक प्रमाण होगा। लोकके अर्धच्छेदोंमें आवली के असंख्यातवे भागके अर्धच्छेदोंसे भाग देनेपर जितना लब्ध आता है उतने क्षेत्र विकल्प होनेपर ही क्षेत्र का प्रमाण असंख्यात लोक हो जायेगा क्यों कि इतनी बार आवलीके असंख्यातवे भागके गुणकार हुये हैं उनको परस्पर गुणा करनेपर लोकका प्रमाण आता है उसको जघन्य क्षेत्र में गुणा करनेपर असंख्यात लोक लब्ध आता है। लोकके अर्धच्छेद पल्यके असंख्यातवें भागप्रमाण है उसमें आवलीके असंख्यातवे भागके अर्धच्छेदोंसे भाग

देनेपर भी पल्योपम का असंख्यातवा भाग ही लब्ध आता है इसलिए यहाँपर पल्योपमके असंख्यातवे भाग प्रमाण स्थान जानेपर ही अवधिक्षेत्र असंख्यात लोक मात्र होता है ऐसा बताया है।

यदि पल्योपमके असंख्यातवे भाग मात्र क्षेत्रविकल्पों को माननेपर भी देशावधि के असंख्यात लोकमात्र क्षयोपशम विकल्पों के अभाव का प्रसंग आता है। पल्योपम के असंख्यातवे भाग मात्र क्षेत्रविकल्प मानेंगे तो कालका प्रमाण आवली का असंख्यातवा भाग ही रहेगा क्यों कि अंगुलके असंख्यातवे भागमात्र क्षेत्रविकल्प होनेपर एकबार कालमें वृद्धि होती है। पल्योपम का असंख्यातवा भाग अंगुलके असंख्यातवें भागसे बहुत छोटा है अर्थात असंख्यातवा भाग है। इसलिए एकबार भी कालवृद्धि नहीं पायी जायेगी अतः कालका प्रमाण आवलीका असंख्यातवा भाग ही रहेगा।

पृ.४२

क्षेत्रोपम अग्निकायिक जीव इसका अर्थ → तेजस्कायिक जीवोंके अवगाहना भेद × तेजस्कायिक राशि

इतने ही परमावधिके भेद है।

तेजस्कायिक जीवोंके अवगाहना भेद = तेज. उत्कृष्ट अवगाहना − जघन्य अवगाहना + १

सूक्ष्म तेज. अ.

$$\left\{\frac{\text{घनांगुल} \times \text{असंख्यात}^{1}}{\text{असंख्यात}} - \frac{\text{घनांगुल}}{\text{असंख्यात}}\right\} + 1$$

$$\left\{\frac{६}{प}\,\frac{\partial}{\partial} - \frac{६}{प}\right\} + 1 = \frac{६}{प}\,\frac{\partial}{\partial}$$ तेज. अवगाहना भेद

तेजस्कायिक जीवराशि = असंख्यात लोक $\equiv \partial$

परमावधिज्ञानके भेद = $\equiv \partial \frac{६}{प}\,\frac{\partial}{\partial}$ इसको शलाकारूपसे स्थापन करके द्रव्य, क्षेत्र, काल, भावका प्रमाण निकालते है

परमावधि का उत्कृष्ट द्रव्य →

देशावधि के उत्कृष्ट द्रव्य एकबार भाग देनेपर परमावधिके जघन्य द्रव्यका प्रमाण आता है। शलाकाराशीमेंसे एक कम करना। इसप्रकार ध्रुवहारका बारबार

भाग देकर शलाका राशिमेंसे एक एक कम करते जाना। इसप्रकार शलाका राशिके समाप्त होनेपर अन्तमें जो द्रव्यविकल्प प्राप्त होता है वह परमावधिका उत्कृष्ट द्रव्य का प्रमाण है वह ध्रुवहारका (मनोवर्गणा ÷ अनन्त) जितना प्रमाण है उतना ही है। उसे एकबार ध्रुवहारसे भाग देते है तो सर्वावधिका द्रव्यविषय एक परमाणु आता है।

परमावधिका भावविषय →

उत्कृष्ट देशावधिके भावको असंख्यातसे गुणा करनेपर जघन्य परमावधिके भावका प्रमाण आता है।

परमावधिका जघन्य भावविकल्प × असंख्यात = परमावधिका द्वितीय भावविकल्प
परमावधिका द्वितीय " × असंख्यात = " तृतीय भावविकल्प

इसप्रकार शलाका राशि समाप्त होनेतक असंख्यात से गुणित करना चाहिए। अंतिम शलाका समाप्त होनेपर जो प्रमाण हुआ वही उत्कृष्ट परमावधिका भावविषय है।

परमावधिके क्षेत्र और कालका प्रमाण लाने की विधि →

परमावधि के प्रत्येक भेद में क्षेत्र और कालका प्रमाण असंख्यात गुणा बढ़ता है। जिस नम्बरका भेद हो उतनी संख्याका एकबार संकलन करना जितना संकलन धन आवेगा उतनी बार आवलीका असंख्यातवा भाग रखकर गुणा करना। जो प्रमाण आवेगा उससे देशावधिके उत्कृष्ट क्षेत्र और उत्कृष्ट कालको गुणा करनेसे उस भेदके क्षेत्र और कालका प्रमाण आता है।

जैसे 1 नम्बरपर एक का संकलन धन एक ही आता है अतः एकबार आवली का असंख्यातवा भाग रखकर उत्कृष्ट देशावधिका क्षेत्र लोकसे गुणा करनेपर परमावधिका प्रथम क्षेत्रविकल्प आता है और उत्कृष्ट काल एक समय पल्यको गुणा करनेपर प्रथम कालविकल्प आता है। ≡ 2/4-1 2
2 का संकलन धन 1+2 = 3 आता है इसलिए तीनबार आवलीके असंख्यातवें भाग रखकर उत्कृष्ट देशावधि के क्षेत्र और कालको गुणा करनेपर परमावधि के द्वितीय क्षेत्र और कालका प्रमाण आता है। इसप्रकार आगे भी जानना। यहाँपर आवली के असंख्यातवे भागकी संदृष्टि ६ ऐसी जानना।

फर जिस संख्याका संकलन धन निकालना हो उस संख्याको और उसकी आगे की संख्याको गुणा करना उसे भाज्यराशि बनाना और उसके नीचे एक और दो लिखकर उसे भागहार राशि करके भाग देनेपर जितना लब्ध आता है वह उस संख्याका एकबार संकलनधन होता है। जैसे ३ संख्याका एकबार संकलन धन $\frac{3\times\cancel{4}^{2}}{\cancel{2}\times 2} = ६$ आता है *

परमावधिके क्षेत्रविकल्प →

पांचवा $\frac{५\times६}{१\times२} = १५$ ≡ ∠ ∠ ∠ ∠ ∠ ∠ ∠ ∠ ∠ ∠ ∠ ∠ ∠ ∠ ∠
० ० ० ० ० ० ० ० ० ० ० ० ० ० ०

चौथा $\frac{४\times५}{२\times१} = १०$ ≡ ∠ ∠ ∠ ∠ ∠ ∠ ∠ ∠ ∠ ∠
० ० ० ० ० ० ० ० ० ०

तिसरा $\frac{३\times४}{२\times१} = ६$ ≡ ∠ ∠ ∠ ∠ ∠ ∠
० ० ० ० ० ०

दुसरा $\frac{२\times३}{२\times१} = ३$ ≡ ∠ ∠ ∠
० ० ०

प्रथम $\frac{१\times२}{२\times१} = १$ ≡ ∠
०

यहां इसीको दुसरी पद्धति से बताया है।
दो आवलीके असंख्यातवे भागको दो जगह स्थापित करना। एकको अवस्थित गुणकार और दुसरेको अनवस्थित गुणकार कहा है। देशावधिके उत्कृष्ट क्षेत्र लोकको अनवस्थित गुणकारसे गुणित करनेपर परमावधिके जघन्य क्षेत्र होता है। पुनः परमावधि के जघन्य क्षेत्रको अवस्थित गुणकारसे गुणित नीचेके अनवस्थित गुणकारसे गुणित करनेपर परमावधि के क्षेत्रका द्वितीय विकल्प होता है। इसीप्रकार आगे भी अवस्थित गुणकारको नीचेके विकल्पके अनवस्थित गुणकारसे गुणित करके पूर्वके क्षेत्रको गुणा करनेपर विवक्षित क्षेत्रविकल्प होता है। इसीप्रकार कालके भी गुणकार जानना। विशेष इतना है कि वहां उत्कृष्ट देशावधिके कालको (पल्य-१) गुणा करनेपर परमावधिका जघन्य काल आता है।

अनन्तर 14 का भेद = पूर्व का क्षेत्र × पूर्व अनवस्थित गुणकार × अवस्थित गुणकार

अवस्थित गुणकार ×

चौथे भेदका क्षेत्र × ↑ × नीचेका अनवस्थित गुणकार

पांचवा भेद $\equiv \frac{८}{१} \times \frac{८}{१} \times \frac{८}{१} \times \frac{८}{१} \times \frac{८}{१} \times \frac{८}{१} \times \frac{८}{१} \times \frac{८}{१} \times \frac{८}{१} \times \frac{८}{१} \times \frac{८}{१} \times \frac{८}{१} \times \frac{८}{१} \times \frac{८}{१} \times \frac{८}{१}$

तृतीय भेदका क्षेत्र × अवस्थित × नीचेका अनवस्थित गुणकार

चतुर्थ भेद $\equiv \frac{८}{१} \times \frac{८}{१} \times \frac{८}{१} \times \frac{८}{१} \times \frac{८}{१} \times \frac{८}{१} \times \frac{८}{१} \times \frac{८}{१} \times \frac{८}{१} \times \frac{८}{१} \times \frac{८}{१} \times \frac{८}{१} \times \frac{८}{१} \times \frac{८}{१}$

तृतीय भेद $\equiv \frac{८}{१} \times \frac{८}{१} \times \frac{८}{१} \times \frac{८}{१} \times \frac{८}{१} \times \frac{८}{१} \times \frac{८}{१}$

द्वितीय भेद $\equiv \frac{८}{१} \times \frac{८}{१} \times \frac{८}{१}$ जघन्य क्षेत्र × नीचेका अनवस्थित गुणकार × अवस्थित गुणकार

प्रथम भेद $\equiv \frac{८}{१}$

$\frac{८}{१}$ अवस्थित गुणकार $\frac{८}{१}$ अनवस्थित गुणकार

इसीप्रकार मत्य→ को इन्हीं गुणकारोंसे गुणित करनेपर कालका प्रमाण आता है।

पृ.४६-४७ शंका → अनवस्थित गुणकार किस स्थानमें घनलोक मात्र होता है?

लोकके अर्धच्छेद÷ आवलीके असंख्यातवें भागके अर्धच्छेद = लब्ध

उपर्युक्त लब्धप्रमाण स्थान जानेपर अनवस्थित गुणकार लोकमात्र होता है क्योंकि लोकके अर्धच्छेदोंमें आवलीके असंख्यातवें भागके अर्धच्छेदोंसे भाग देनेपर जो लब्ध आता है उतनी बार आवली के असंख्यातवे भागको रखकर परस्पर गुणा करनेपर लोक आता है। प्रत्येक भेदोंमें अनवस्थित गुणकारमें एक-एक आवलीका असंख्यातवा भाग बढ़ता गया है। इसलिए उपर्युक्त लब्धमात्र स्थान जानेपर अनवस्थित गुणकार लोकमात्र होता है।

जैसे आवली का असंख्यातवा भाग ४ माना, लोक २५६ माना

२५६ के अर्धच्छेद ~~८~~ ३ के अर्धच्छेद 2 ८÷2=४

चौथे स्थानपर अनवस्थित गुणकार लोकमात्र (२५६) होता है ४×४×४×४=२५६

वहाँसे लेकर ऊपर सर्वत्र अनवस्थित गुणकार असंख्यात लोकमात्र होता है क्योंकि प्रत्येक विकल्पमें अनवस्थित गुणकार अवस्थित गुणकारसे गुणित होता गया है।

परमावधि का उत्कृष्ट क्षेत्र = परमावधिका द्विचरम क्षेत्र × द्विचरम अनवस्थित गुणकार × अवस्थित गुणकार (आवली - असंख्यात)

परमावधि का उत्कृष्ट काल = परमावधिका द्विचरम काल × द्विचरम अनवस्थित गुणकार × अवस्थित गुणकार

परमावधिका उत्कृष्ट द्रव्य ÷ ध्रुवहार = १

सर्वावधिका उत्कृष्ट द्रव्य = ध्रुवहार ÷ ध्रुवहार = एक परमाणु

परमावधि का उत्कृष्ट द्रव्य ध्रुवहार प्रमाण है। ध्रुवहार को ध्रुवहार से भाग देनेपर एक शेष रहता है। इसलिए सर्वावधि एक परमाणु को जानते है।

सर्वावधिका उत्कृष्ट भाव = परमावधिका उत्कृष्ट भाव × असंख्यात

सर्वावधिका उत्कृष्ट क्षेत्र = परमावधिका उत्कृष्ट क्षेत्र × असंख्यात लोक × असंख्यात लोक

यहाँ परमावधिके उत्कृष्ट क्षेत्रको आवली के असंख्यातवें भाग से गुणित अन्तिम अनवस्थित गुणकारसे गुणित करनेपर सर्वावधि के उत्कृष्ट क्षेत्रका प्रमाण नहीं आता है।

परमावधि का उत्कृष्ट क्षेत्र और सर्वावधिका उत्कृष्ट क्षेत्र इसमें बहुत बड़ा अंतर है यह यहांपर सिद्ध करते है —

प्रथम परमावधिके क्षेत्रका प्रमाण घनाघनधारामें कहांपर स्थित है और सर्वावधिका क्षेत्र कहांपर स्थित है उसे दिखाते है।

परमावधिका उत्कृष्ट क्षेत्र →

तेजस्कायिक जीवोंके अवगाहना स्थानोंसे गुणित तेजकायिक राशिको गच्छ रूपसे स्थापित करके उसका एकबार संकलन धन निकालना

$$\frac{(\text{तेजस्कायिक राशि} \times \text{तेज. अवगाहना भेद})}{2} \times \frac{(\text{तेज राशि} \times \text{तेज. अवगाहना भेद} + 1)}{2} = \text{संकलन धन}$$

$$\equiv \partial^{\overset{1}{\underset{\partial}{\text{प}}}} \overset{1}{\underset{2}{\text{ह}}} \partial^{\overset{1}{\underset{1}{\text{प}}}} \times \equiv \partial^{\overset{1}{\underset{\partial}{\text{प}}}} \overset{1}{\underset{1}{\text{ह}}} \partial^{\overset{1}{\underset{1}{\text{प}}}} = \text{संकलन धन}$$

यह राशि तेजस्कायिक राशिके वर्गको लांघकर उससे उपरिम वर्गके नीचे है।

$$= \partial^{2} \times (\text{तेज राशि})^{2}$$

~~इस~~ यहापर तेजस्कायिक राशीका तेजस्कायिक राशि से गुणकार है अतः उसका वर्ग हुआ और उन दोनों राशिओंमें तेजस्कायिक अवगाहना भेदोंका गुणकार है इसलिए यह राशि तेजस्कायिक राशिके वर्गके ऊपर है और उसके वर्गके वर्गसे नीचे है

उपर्युक्त संकलन धन रूप राशीका विरलन करके उसके ऊपर आवलि के असंख्यातवें भागको देकर परस्पर गुणित करनेपर जो लब्ध आता है उससे देशावधि के उत्कृष्ट क्षेत्र घनलोकको गुणित करनेपर परमावधिका उत्कृष्ट क्षेत्र होता है।

Page 49 Q3

अब यह राशि घनाघनधारामें कौनसे स्थानपर स्थित है यह बताते हैं उसीको यहाँ अध्वानकी खोज करते हैं ऐसा कहा है। इससे यह सिद्ध होगा कि परमावधि का क्षेत्र कहाँ है और उससे कितने स्थान आगे जाकर सर्वावधि का क्षेत्र आता है)

विरलन राशिके अर्धच्छेद + देयराशिके अर्धच्छेद के अर्धच्छेद अथवा देयराशीकी वर्गशलाका = उत्पन्न राशीकी वर्गशलाका

जैसे ४ विरलन, ४ देयराशी $\underset{1}{4}\ \underset{1}{4}\ \underset{1}{4}\ \underset{1}{4}$ = २५६ उत्पन्न राशी

उपर्युक्त सूत्रानुसार 2 + 1 = 3 २५६ की वर्गशलाका 3

उपर्युक्त विरलन राशीके अर्धच्छेद = तेजस्कायिक जीवोंके अर्धच्छेदोंसे कुछ अधिक दुगुणे हैं। क्योंकि किसी भी राशिके वर्गके अर्धच्छेद उस राशीके अर्धच्छेदोंसे दुगुणे होते हैं जैसे ४ के अर्धच्छेद 2, १६ के अर्धच्छेद उससे दुगुणे अर्थात ४ हैं। विरलन राशीमें तेजस्कायिक अवगाहना भेद के वर्गका भी गुणकार है उसके अर्धच्छेद निकालकर उसे तेजस्कायिक जीवोंके दुगुणे अर्धच्छेदोंमे जोडनेपर विरलन राशिके अर्धच्छेद होते हैं।

किसी भी गुण्य गुणकार से उत्पन्न राशिके अर्धच्छेद निकालने की सूत्र →

गुण्यराशीके अर्धच्छेद + गुणकार राशीके अर्धच्छेद = उत्पन्न राशिके अर्धच्छेद

जैसे १६ × ८ = १२८ इसके अर्धच्छेद ४ + 3 = 7 होते हैं।

इसप्रकार उपर्युक्त विरलन राशिके अर्धच्छेद = (तेजस्कायिक राशीके अर्धच्छेद × 2) + तेजस्कायिक अवगाहनाके अर्धच्छेद × 2 + (आ/2) वर्गशलाका

क्योंकि वर्ग

इसमें उपर्युक्त देयराशि आवलि ÷ असंख्यात की वर्गशलाका मिलानेपर परमावधिके उत्कृष्ट क्षेत्र के गुणकार की वर्गशलाकाएं होती हैं। अ

= (तेजराशि के छे × 2) + (तेज-अवगा के छे × 2) + $\left(\frac{आ}{2}\right)$ वर्गशलाका

अर्थात परमावधि का गुणकार इतने स्थान बाद घनाघनधारा में वह स्थान है।

चालित अध्वान = अर्थात लोक के ऊपर कितने स्थान आगे जाएंगे

किसी भी राशिकी जितनी वर्गशलाकाए होती है वह राशि उस वर्गधारामे अथवा घनधारामें उतनेवे स्थानपर है ऐसा समझना जैसे २५६ की वर्गशलाकाए ३ है इसलिए २५६ द्विरूपवर्गधारामें तिसरे स्थानपर है।
परमावधि के उत्कृष्ट क्षेत्र की उपर्युक्त वर्गशलाकाए है इसलिए परमावधि का उत्कृष्ट क्षेत्र घनाघनधारामें उतनेवें स्थानपर है ऐसा जानना।

यह स्थान तेजस्कायिक राशिसे कितने ऊपर है यह बताते है →
किसी भी वर्गराशिसे दूसरी वर्गराशि कितने स्थान ऊपर है इसको निकालने के लिए सूत्र

{(ऊपरके वर्गराशि की वर्गशलाका ÷ नीचे की राशि की वर्गशलाका) − १} × नीचे की राशिकी वर्गशलाका = चढित अध्वान

जैसे १६ की वर्गशलाका 2, एकड़ी की वर्गशलाका ६

६ ÷ 2 = ३ − १ = 2 × 2 = ४ चढित अध्वान अर्थात १६ के ऊपर चौथे स्थानपर एकड़ी वर्गराशि है।

द्विरूपवर्गधारा ४, १६, २५६, ६५५३६, ४2 = बादाल, १८ = एकड़ी

इसीप्रकार यहाँपर जानना -

{(परमावधि के उत्कृष्ट क्षेत्र की वर्गशलाका ÷ तेजस्कायिक राशिकी वर्गशलाका) − १} × तेजस्कायिक राशिकी वर्गशलाका = चढित अध्वान
(तेजराशि के ऊपर ४५ वर्गस्थान) × तेज वर्गशलाका

अर्थात तेजस्कायिक राशि के ऊपर इतने वर्गस्थान जानेपर परमावधि के उत्कृष्ट क्षेत्र का स्थान होता है। यह परमावधिका उत्कृष्ट क्षेत्र तेजस्कायिक जीवोंकी कायस्थिति से बहुत कम है क्योंकि तेजस्कायिक राशिके अर्धच्छेदोंसे कुछ अधिक दुगुणे प्रमाण उसकी वर्गशलाकाये है और तेजस्कायिक राशिके ऊपर असंख्यात लोकमात्र वर्गस्थान जाकर तेजस्कायिक कायस्थितिकी वर्गशलाकाएँ उत्पन्न होती है। इसलिए परमावधिका उत्कृष्ट क्षेत्र तेजस्कायिक कायस्थितिसे नीचे असंख्यात लोक मात्र वर्गस्थान जानेपर उत्पन्न होता है उसे केवल आवली के असंख्यातवें भागसे गुणित परमावधिके अनवस्थित गुणकारसे गुणित करनेपर सर्वावधिका उत्कृष्ट क्षेत्र उत्पन्न नहीं होता।
क्योंकि यह परमावधि का अनवस्थित गुणकार परमावधि के क्षेत्रका असंख्यातवा भाग है उससे परमावधि के क्षेत्रको गुणित करनेपर उसका वर्ग भी नही होता।

सार ---- तेज. राशि तेज राशि² परमावधि ... तेज कायस्थिति तेज के क्षेत्र का वर्ग तेज के क्षेत्र स्थान

चढित अध्वान १६ स्थान नीचे

सर्वावधि का क्षेत्र तेजस्कायिक कायस्थिति से भी असंख्यात वर्गस्थान आनेपर उत्पन्न होता है।

सर्वावधि क्षेत्र का प्रमाण निकालने के लिए गुणकार का प्रमाण -

$$\frac{\text{सर्वावधि क्षेत्र}}{\text{परमावधि का उत्कृष्ट क्षेत्र}} = \text{सर्वावधि के क्षेत्र का गुणकार}$$

$$\frac{\equiv\times\equiv\partial\times\equiv\partial\times\equiv\partial\times\equiv\partial\times\equiv\partial}{\equiv\times\equiv\partial\times\equiv\partial\times\equiv\partial} = \equiv\partial\ \equiv\partial \text{ गुणकार का प्रमाण}$$

इस गुणकारसे परमावधि के उत्कृष्ट क्षेत्रको गुणानेपर सर्वावधि के उत्कृष्ट क्षेत्र का प्रमाण आता है।

परमावधि का उत्कृष्ट क्षेत्र × उपर्युक्त गुणकार = सर्वावधि क्षेत्र का प्रमाण

$$\equiv\times\equiv\partial\times\equiv\partial\times\equiv\partial\ \times\ (\equiv\partial\ \equiv\partial) \rightarrow \equiv\ \equiv\partial\ \equiv\partial\ \equiv\partial\ \equiv\partial\ \equiv\partial$$

तेजकायिकोंकी कायस्थिति और सर्वावधिसे संबंधित क्षेत्रके परस्पर गुणकारके वर्गकी अर्धच्छेद शलाकाओंके ऊपर असंख्यात लोक मात्र वर्गस्थान जानेपर सर्वावधि निबद्ध क्षेत्र उत्पन्न होता है।

परमावधि का उत्कृष्ट काल × उपर्युक्त गुणकार = सर्वावधि का काल

$$\text{प-१}\times\equiv\partial\ \equiv\partial\ \equiv\partial\ \times\ \equiv\partial\ \equiv\partial\ =\ \text{प-१}\ \equiv\partial\ \equiv\partial\ \equiv\partial\ \equiv\partial\ \equiv\partial$$

अवधि निबद्ध क्षेत्र = सर्वावधि का क्षेत्र